इकाई 11 संघवाद

संरचना

11.1 प्रस्तावना
11.2 भारतीय संघवाद का विशिष्टीकरण : संघीय संघ का सहज रूप
11.3 भारतीय संघवाद के प्रमुख लक्षण
11.4 'संघ' शब्द का अर्थ और प्रभाव
11.5 अंतर-राज्यीय समन्वयन
11.6 सामर्थ्य का वितरण
11.7 संघीय तंत्र की कार्यप्रणाली
11.8 संघ द्वारा की गई विकेंद्रीकरण की पहल
11.9 अंतिम टिप्पणी
11.10 सारांश
11.11 अभ्यास

11.1 प्रस्तावना

संघवाद राष्ट्र और राज्य निर्माण का एक गतिशील सिद्धांत है। प्रमुखत: यह संस्थागत राजनीतिक सहयोग और सामूहिक सह-अस्तित्व के बारे में एक सिद्धांत है। दूसरे शब्दों में, जिसे डेनियल इलजार ने संकल्पनात्मक रूप से 'स्वयंशासन और सहयोजित शासन' का नाम दिया है, के आव्यूह प्रबंधन में 'साथ साथ रहने' की एक महान संरचना है। इसका प्रमाण चिह्न, रशीदुद्दीन खान के अनुसार, 'राजतंत्र की एकता तथा समाज की अनेकता' है। राष्ट्रनिर्माण के सिद्धांत के रूप में संघवाद राज्य-समाज रिश्तों को इस तरीके से परिभाषित करना चाहता है जिससे सामाजिक समूहों को सांविधिक तौर पर सुरक्षित और अधिदेशित संस्थागत वातारण में फलने-फूलने के लिए पहचान की स्वायत्तता मिल सके। संघीय संविधान जनता, विशेष रूप से अल्पसंख्यकों के विशेष सांस्कृतिक अधिकारों को मान्यता देता है। इस अर्थ में, यह विविध संस्कृति के सिद्धांत के बहुत निकट होते हुए भी भिन्न है क्योंकि संविधान की बारीकियाँ विविधताओं के सैद्धांतीकरण पर संघात्मक बल देने में तथा 'सहयोजित शासन' के विभिन्न संरचनात्मक विन्यास के माध्यम से दो भिन्न प्रकार की पहचानों के बीच सामाजिक राजनीतिक सहयोग के सुगमीकरण में निहित हैं।

राज्य निर्माण सिद्धांत के रूप में, संघवाद के तीन मुख्य संघटक है : (i) राज्यों के गहन तथा संघीय-स्थानीय प्रशासन का क्षेत्रीकरण इस प्रकार हो जिससे जनता और सरकार के बीच संपर्क को बढ़ावा मिले; (i) ग़ैर-केंद्रीकृत आधार पर संघीय शक्तियों का वितरण; और (iii) सहयोजित शासन की संस्थाओं का स जन। प्रथम संघटक का अवश्यमेव अर्थ है 'स्वशासन' की संस्थाओं का स जन। उच्च स्तर पर स्वशासन की संस्थाओं का अर्थ है राज्यों का स जन तथा निम्न स्तर पर यह स्थानीय स्व-शासन की संस्थाओं का हवाला देता है। राज्य अथवा प्रशासन की क्षेत्रीय इकाइयाँ आमतौर पर जनता, संस्कृति और

क्षेत्र के बीच देश-काल के संदर्भ में अंतर्क्रिया प्रतिदर्श की सापेक्ष निरंतरता अथवा सांतरता के आधार पर गठित की जाती है। दूसरे शब्दों में इसका तात्पर्य है 'जीवनक्षम सजातीयता' के सिद्धांत पर राज्यों का गठन। राज्य व्यवस्था में अनेक उपराज्य प्रबंधन शामिल हो सकते हैं जैसे भू-प्रजातीय दायरों में रहने वाले लोगों की विशिष्ट सांस्कृतिक और प्रशासनिक अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए क्षेत्रीय परिषदें अथवा जिला परिषदें। द्वितीय संघटक एक सापेक्षत: स्वायत्तता आधार पर संघीय शक्तियों और कार्यों के बँटवारे का हवाला देता है जहाँ प्रत्येक इकाई के पास आंबटित क्षेत्र, अपने कार्यों को दक्षतापूर्वक और प्रभावी ढंग से पूरा करने के लिए पर्याप्त विधायी सक्षमता, कार्यकारी प्राधिकार और वित्तीय संसाधन होते हैं।

हाल के वर्षों में क्षमता विभाजन और वितरण की धारणा अस्तित्व में आई है। सामर्थ्य अथवा क्षमता संघीय-क्षेत्रीय प्रशासन की विभिन्न इकाइयों के क्रियात्मक रूप से परिष्कृत तथा सांविधिक रूप से संरक्षित होने की ओर इशारा करती है। स्पेनिश उदाहरण के मद्देनजर, फर्नान्डिज सेगाडो ने क्षमताओं को निम्न पाँच प्रकार के वर्गों में वर्गीकृत किया है :

(क) *आंतरिक क्षमताएँ :* वे हैं जिनमें एक मात्र प्राधिकरण-आमतौर पर राज्य-विशेष कार्य से संबधित सभी प्रकार के सार्वजनिक कार्यों को करता है, (ख) *अनन्य परंतु सीमित क्षमताएँ :* वे हैं जिनमें एक प्राधिकरण के पास पूर्ण सक्षमता होती है परंतु विशिष्ट तरीके से विशिष्ट सीमा तक। इस प्रकार, यह कार्य नहीं हैं अपितु ऐसा मामला है जो विखंडित है। (ग) *सहयोजित सक्षमताएँ :* वे हैं जिनमें राज्य और स्वायत्त समुदाय (परिषद्) दोनों एक ही मामले में एक ही जैसे कार्य के संपूरक अंशों को व्यावहारिक रूप देने के लिए हकदार है। यह ऐसा मामला है जिसमें उन मामलों की पुनराव त्ति होती है जिनमें राज्य ने अपने लिए मौलिक कानून बनाया हुआ है और स्वायत्त समुदाय विधायी विकास में लगा हुआ हैं। (घ) *सहवर्तन (concurring) क्षमताएँ :* वे हैं जिनमें राज्य तथा स्वायत्त समुदाय की सक्षमताएं भिन्न होती हैं परंतु एक ही मौलिक उद्देश्य पर लागू होती हैं (च) *अभिन्न क्षमताएँ :* वे हैं जो बिना किसी विशिष्टता के राज्य और स्वायत्त समुदायों को दी गई हैं और उन्हें एक ही मामले का अलग-अलग तरीके से निपटान करने के लिए सक्षम बनाती हैं।

उपरोक्त से यह तथ्य प्रकट होता है कि क्षमताओं का वितरण क्षेत्रीय आयात और नीति निर्माण और उसके कार्यान्वयन के लिए अनन्य अथवा सहयोजित नियंत्रण हेतु विषय के सामुदायिक महत्त्व के आधार पर विषयों की पहचान और वितरण का बहुविध अभ्यास है। सहयोजित 'समताओं की रंगभूमि में किसी विषय पर नीति की विषय वस्तु का विभाजन और वितरण होता है। दूसरे शब्दों में इसका तात्पर्य विषय के क्षेत्रीय विभाजन से है। आवंटित क्षमता के दायरे में प्रत्येक इकाई निर्णय और कार्यान्वयन के लिए तकरीबन पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त है। यहाँ इस तथा की चर्चा करना उपयुक्त रहेगा कि संघवाद वर्षानुवर्ष नीति विज्ञान के रूप में विकसित हुआ है जहाँ अनुशासन का मूलभूत उद्देश्य अभिलक्षित उद्देश्यों और नीतियों की दक्षता और प्राप्ति के रूप में प्रतीत होता हैं। यह संघीय सिद्धांत से आगे का चरण है वहाँ यह अपने निर्णायक संसाधन लोकप्रशासन और प्रबंधन केंद्र अनुशासनों से ग्रहण करता है।

प्रशासन और शासन, संघवाद और संघीय व्यवस्था का अनुक्रमणात्मक सिद्धांत निम्न प्रबंधनों जैसे अकेंद्रीकरण, विकेंद्रीकरण और विकेंद्रन में किसी एक अथवा सबका संयुक्त रूप से अनुसरण कर सकता है। अकेंद्रीकरण क्षमताओं के परंपराओं से हटकर वितरण का हवाला देता हैं विकेंद्रीकरण का अर्थ है

क्षमता का एक संघीय संरचना से किसी अन्य अधीनस्थ अधिशासी प्राधिकरण और संरचनाओं को सशर्त परंपराक्रनुम में वितरण और अकेंद्रन का अर्थ है आमतौर पर अधिशासी प्राधिकार और कार्यों का एक प्राधिकरण से दूसरे प्राधिकरण को भार का आंशिक निष्कासन। संघवाद का आवश्यक लक्षण है ऐसी संघीय राजनीतिक संस्कृतिक का स जन जिसमें आपसी बातचीत के माध्यम से मतभेदों का पता लगाया जाए तथा सर्वनिष्ठ चिंता और राष्ट्रीय महत्त्व के ऊपर सामंजस्य बनाया जाए।

तीसरा घटक सहयोजित शासन के प्रतिष्ठानों से संबंधित है। यह संघवाद को हस्तांतरणीय महत्त्व और पारंपरिक चिंतन के मामलों पर स्वाशासन तंत्र से हटकर सामूहिक शासन तंत्र की ओर ले जाता है। सहयोजित शासन संस्थान विभिन्न प्रकार के प्रतिष्ठानों का रूप ले सकते है जैसे क्षेत्रीय परिषद्, शासन संस्थान, मंत्रालयीन परिषद्, अंतरराज्यीय परिषद्, स्वतंत्र संवैधानिक प्राधिकरण जैसे बोर्ड, आयोग, नियोजन एवं अन्य नियामक निकाय। सहयोजित शासन प्रतिष्ठनों का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य सिंचाई संबंधी और राष्ट्रीय महत्त्व तथा अंतरराज्यीय विवादों को हल करने के मामलों पर नीति मानदण्ड और द ष्टिकोण की विकासशील एकरूपता निर्धारित करना है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि संघवाद का कोई अनन्य अथवा सार्वभौमिक प्रतिदर्श नहीं है। दो संघीय राज्य तंत्र कुछ उभनिष्ठ विशेषताओं को शेयर करते है परंतु शासन संरचना और प्रक्रिया में व्यापक रूप से भिन्न होते हैं। संघीय राज्यतंत्र अपने अनन्य 'संघीय संघ' और 'संघीय राष्ट्र का अपने निजी जिला सामाजिक संगठन, सामाजिक ग्रुपों के मध्य सांस्कृतिक विभेदन, पहचान और विकास की क्षेत्रीय और उपक्षेत्रीय गतिशीलता, तथा अपने संविधान और राष्ट्रवाद के अपेक्षित उद्देश्यों और विशिष्टताओं के अनुसार निर्माण करते हैं। यथार्थ कारण यह है कि प्रत्येक संघीय राज्य संघ तंत्र एक विशिष्ट प्रकार के संघवाद से मिलकर बनता है। यही स्थिति भारतीय संघवाद के मामले में है।

11.2 भारतीय संघवाद का विशिष्टीकरण : संघीय संघ का सहज रूप

परंपरागत-विधि सम्मत पांडित्य (Scholorship) ने भारतीय संघवाद को 'अर्ध-संघीय' के रूप में विशिष्टता प्रदान की है जिसका अर्थ है'' एक ऐसा एकीकृत राज्य जो आनुषंगिक एकीकृत सिद्धांतों वाला संघीय राज्य न हो अपितु जिसके आनुषंगिक संघीय सिद्धांत हो'' (के०सी० हिअरे)। ऐसा विशिष्टीकरण संभवतया भारतीय संघवाद के पूर्णतावादी परिप्रेक्ष्य, उसके गठन, व द्धि और विकास को हिसाब में नहीं लेता है। यह सत्य है कि भारतीय संघवाद में, कतिपय परिस्थितियों के अध्यधीन, केंद्रीकरण की अंतर्निमित प्रव त्ति होती है जो उसे, उसके बावजूद भी, अर्धसंघीय बनाती है। आबंटित क्षेत्र में, राज्य उतना ही संप्रभु होता है जिनता संघ। इस संबंध में संविधान सभा में बी०आर० अंबेडकर के भाषण पुन: स्मरणीय है। 3 अगस्त 1949 को आपात्काल उपबंधों पर एक चर्चा के दौरान उसने कहा था :

> मैं सोचता हूँ कि यह सर्वसम्मत है कि हमारा संविधान, इसके अंदर अनेक प्रतिबंधों जिनके तहत केंद्र को राज्यों के ऊपर अधिभावी शाक्तियां प्रदान की गई हैं, के बावजूद भी एक संघीय संविधान है और जब हम यह कहते हैं कि हमारा संविधान एक संघीय संविधान है तो इसका तात्पर्य है कि राज्य अपने क्षेत्र में जो उनको दिया गया है उतने ही संप्रभु है जितना कि केंद्र उस क्षेत्र में संप्रभु है जो उसको सौंपा गया है। दूसरे शब्दों में, उन उपबंधों के रहते हुए भी जो केंद्र को किसी भी कानून जो राज्यों द्वारा पारित किया गया है, के ऊपर अधिभावी

होने की अनुमति देता है, वहीं राज्यों को शांति, व्यवस्था और अपने राज्य के अच्छे शासन के लिए कोई कानून बनाने का पूर्ण अधिकार होता है। अब, जब संविधान के राज्यों को संप्रभु बनाता है और उन्हें पूर्णाधिकार प्रदान करता है केंद्र अथवा किसी अन्य प्राधिकरण द्वारा हस्तक्षेप पर रोक होनी चाहिए क्योंकि ऐसा करना राज्य की संप्रभुता पर आक्रमण होगा, जिसे हमें स्वीकार करना चाहिए कि हमारा एक संघीय संविधान है। (इसे जोर देकर कहा गया)।

भारतीय संविधान के लिए आवश्यकीय और एक मात्र लक्षण केंद्रवाद के अभियोग को अस्वीकार करते हुए अंबेडकर ने उस सभा में 25 नवंबर 1949 को कहा था :

संविधान का मूलभूत सिद्धांत यह है कि केंद्र और राज्यों के बीच विधायी और कार्यकारी शक्तियाँ केंद्र द्वारा बनाए गए कानून से विभाजित नहीं है अपितु स्वयमेव संविधान में ऐसा किया गया है। यह वैसा ही है जैसा संविधान में अपेक्षित है। राज्य किसी भी स्थिति में अपने विधायी अथवा कार्यकारी प्राधिकारों के लिए केंद्र पर आधारित नहीं हैं इस मामले में केंद्र और राज्य बराबरी पर हैं। यह पता लगाना मुश्किल है कि इस संविधान को किस सीमा तक केंद्रवादी कहा जा सकता है। यह हो सकता है कि संविधान ने केंद्र को अपने विधायी और कार्यकारी प्रचालन के लिए अति विशाल क्षेत्र आवंटित किया हो जो अन्य संघीय संविधान में नहीं है। ऐसा हो सकता है कि अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों को न देकर केंद्र को सौंपी गई हों। परंतु ये लक्षण संघवाद के सार तत्व नहीं हैं। संविधान की प्रमुख पहचान अंतर्निहित है संविधान द्वारा केंद्र और इकाइयों के बीच विधायी और कार्यकारी प्राधिकारों के आबंटन में। यह हमारे संविधान का अंतर्निहित सिद्धांत है। इसके बारे में कोई गलती नहीं हो सकती। यह कहना गलत है कि राज्यों को केंद्र के अधीन रखा गया है। केंद्र स्वयमेव उस स्थिति की सीमाएँ नहीं बदल सकता। न्यायपालिका भी ऐसा नहीं कर सकती है।

जिस सिद्धांत को लेकर इसके प्रवर्तकों ने शक्तियों का केंद्र और राज्यों के बीच विभाजन किया, वह सिद्धांत था कि शक्तियों के विभाजन जिम्मेदारियों के वितरण के अनुरूप होना चाहिए। केंद्र को (i) राष्ट्र निर्माण और राष्ट्रीय संरक्षण, (ii) राष्ट्रीय एकता और अखंडता को बनाए रखने तथा उसकी सुरक्षा करने, और (iii) संपूर्ण भारत संघ में संवैधानिक राजनीतिक व्यवस्था को बनाए रखने की महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ सौंपी गई हैं। राज्यों को केवल वे विषय सौंपे गए हैं जो स्वभाव से पूर्णरूपेण स्थानीय हैं। इसके अतिरिक्त, उसको सोंपे गए विषयों पर कानून बनाने, उसका विनिमयन करने तथा उसके कार्यान्वयन की स्वायत्तता होने के कारण, राज्यों से संघ की नीतियों, विशेष रूप से राष्ट्र निर्माण के पहलू से संबंधित, के समन्वयन, सहयोग और कार्यान्वयन की अपेक्षा की जाती है।

संविधान निर्माताओं द्वारा यथा निर्धारित संघीय संघ के अनिवार्य रूप से तीन संघटक होंगे : (i) सामाजीय स्तर पर, एक जैसे सामाजिक संघ के निर्माण की अपेक्षा करता है जो धर्मनिरपेक्षता के व्यापक दायरे में बहुवादिता (सामूहिक जीवन की) को फलने-फूलने दे। सामाजिक संघ स्थानीय-स्व-सरकार के साधन के माध्यम से कार्य करेगा। (ii) राष्ट्रीय राजनीतिक स्तर पर, यह एक राजनीतिक संघ की स्थापना करना चाहता है जो संसदीय लोकतंत्र और संघवाद की संश्लेषित रचना के माध्यम से कार्य करे। यह उभरकर

आने वाला प्रतिदर्श उस संसदीय संघवाद का है जो संघीय राष्ट्र के तीन मूलभूत उद्देश्यों नामत: जबावदेही स्वायत्तता और अखंडता को प्राप्त करने की अपेक्षा करे। (iii) संघीय संघ सुनियोजित राष्ट्रीय आर्थिक विकास के माध्यम से एक आर्थिक संघ की स्थापना की भी अपेक्षा करता है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था अपेक्षा करती है कि क्षमता निर्माण तथा धन, संसाधन, उद्योग और प्रौद्योगिकी के ध्रुवीय संचयन पर रोक के विभिन्न माध्यमों से क्षेत्रों और वर्गों के बीच श्रेणीबद्ध असमानता समाप्त हो। आर्थिक संघ परिसंघ की प्रत्येक इकाई के लिए न्यूनतम स्तर वाला खेल का मैदान उपलब्ध करने की अपेक्षा करता है।

इस संदर्भ में यह चर्चा की जा सकती है कि संस्थापक पूर्वजों ने विशेष रूप से संघवाद को राष्ट्र निर्माण के उपस्कर के रूप में देखा था, अत: राजनीतिक तंत्र को पर्याप्त रूप से लचीला और राष्ट्रीय विकास में प्रजा द्वारा अपनाए जाने योग्य बना दिया था। यह राष्ट्रीय विकास की अनिवार्यताओं और राष्ट्रीय एकता और अखंडता के रखरखाव के इसीलिए अनुरूप है कि संघवाद की स्थिति समय-समय पर बदलती रहती है। भारतीय संघवाद किसी अकेले सामान्यीकरण अथवा विशिष्टीकरण की अवज्ञा करने के लिए पर्याप्त जटिल है। श्रेष्ठतम स्थिति यह है कि कोई भी इसे 'संघवत् संघीय तंत्र' के रूप में विशिष्ट रूप दे सकता है। इस प्रकार का राजतंत्र में आमतौर पर द्वैत संघवाद (जैसे लाभांश, सुंप्रभता); सहयोगी-सहयोगी संघवाद (सामूहिकवाद का प्रतिदर्श जहाँ संघ और राज्य उभयनिष्ठ चिंतन के मुद्दों को सामूहिक रूप से उठाते है और उन पर निर्णय लेते हैं); और पारस्परिक निर्भर संघवाद (पारस्परिक निर्भरता प्रतिदर्श, यदि राज्य आर्थिक सहायता के लिए संघ सरकार पर बुरी तरह निर्भर करते हैं तो संघ सरकार भी अपनी नीतियों और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए राज्यों पर निर्भर करती है) के लक्षणों को स्वयोजित करता है।

11.3 भारतीय संघवाद के मुख्य लक्षण

संघवत् संघीय राज्यतंत्र दो अंतर्निहित प्रव त्तियों नामत: संघीकरण और क्षेत्रीकरण के अनिवार्य संतुलन के लिए पूर्वानुमान करता है। संघीकरण प्रक्रिया भारतीय संघवाद को उस समय अद्वैतवादी लक्षणों सामान्यतया जिनका केंद्रीकृत संघवाद के रूप में हवाला दिया जाता है को अंगीकार करने की अनुमति देती है जब एक तरफ राष्ट्रीय एकता, भारत की अखंडता और क्षेत्रीय संप्रभुता को बनाए रखने तथा दूसरी तरफ राज्यों में संवैधानिक-राजनीतिक व्यवस्था के रखरखाव को स्पष्ट खतरा हो। तथापि संघ की बोधगम्यता का विशेषाधिकार तथा 'धमकी' की परिभाषा निरपेक्ष नहीं हैं। यह उच्चतम-न्यायालय की समीक्षा के अध्यधीन है। यह एस०आर० बोम्बई मामले में उच्चतम न्यायालय के विनियमन से पूर्णरूपेण स्पष्ट हो चुका है। केवल असामान्य स्थिति (जैसा कि आपात्कालीन उपबंधों की भावना में निहित है) में भारतीय संघवाद अद्वैतवादी स्वरूप को ग्रहण करता है। तथापि, इससे भी अधिक संघीकरण प्रक्रिया संवैधानिक तौर पर संघ सरकार पर लागू होती है जिसके पास मिश्रित अर्थव्यवस्था के साधनों और उपायों तथा राज्य विनियमित कल्याणकारी नियोजन के माध्यम से क्षेत्रीय और सामाजिक क्षेत्रकों में संतुलित आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन प्राप्त करने का अतिरिक्त उत्तरदायित्व होता है। इस प्रयास में संविधान संघ सरकार के सहयोगी भागीदार के रूप में राज्यों की भूमिका निर्धारित करता है। इसके अतिरिक्त, संघीकरण प्रक्रिया की कोई और अधिक राजनीतिक अर्थ और सुसंगतता नहीं है।

संघीकरण सिद्धांतों के साथ भारत का संविधान 'क्षेत्रवाद' और 'क्षेत्रीकरण' को भी राष्ट्र निर्माण और राज्य के गठन के वैध सिद्धांतों के रूप में मान्यता देता है। संवैधानिक उपबंधों की एक गहन संवीक्षा

से पता चलता है कि भारत का संविधान शक्ति वितरण की विभिन्न अवस्थाओं वाले बहुस्तरीय अथवा बहुपर्त्तीय संघ के गठन को स्वीकृति और मान्यता देता है। बहुपर्त्तीय संघ में संघ, राज्य, उपराज्यीय संस्थागत प्रबंध जैसे क्षेत्रीय विकास, स्वायत्त परिषदें और निम्न स्तरों पर स्थानीय स्व-शासन की इकाइयाँ शामिल हैं। संघ और राज्य मिलकर संघीय अपसंरचना का गठन करते हैं तथा शेष दो घटक संघीय अवसंरचना का निर्माण करते हैं। प्रत्येक स्तर पर संवैधानिक रूप से गठित विनिर्दिष्ट संघीय कार्य होते हैं, जिन्हें वे लगभग एक दूसरे से स्वतंत्र निष्पादित करते हैं। तथापि अपसंरचना का अब उपसरंचनाओं पर कतिपय वित्तीय और राजनीतिक नियंत्रण होता है। उपसंरचना को विभागीय विधियाँ दो अपसंरचनाओं द्वारा निर्मुक्त की जाती है। क्षेत्रीय परिषदों के कई निर्णय संबद्ध राज्यों के अनुमोदन के अध्यधीन होते हैं।

वस्तुस्थिति यह है कि भारत का संविधान सक्षमता के सममितिक और असमितिक दोनों प्रकार के वितरण को प्रोत्साहित करता है। यह बहुरंगी व्यवस्था संघ के सभी राज्यों के प्रति सममितिक अनुप्रयोग के साथ शक्ति वितरण का सामान्य सिद्धांत अवनिर्धारित करती है। तदोपरांत संघ और चुनिंदा राज्यों के बीच सक्षमता के विशेष वितरण और शक्ति सहभागिता प्रबंधन के लिए उपबंध हैं। संविधान में अनुच्छेद 370, 371, 371-क से ज, पाँचवीं और छटी अनुसूचियाँ जैसे कई उपबंध हैं जो विशेष प्रकार के संघ-राज्य संबंधों की अनुमति देते हैं। संक्षिप्त में, ये उपबंध कई संघीय नियमों के अनुप्रयोग को सीमित करते है, संसद और सम द्ध राज्य विधायिकों की विधि निर्माण शक्ति को प्रभावित करने वाले संसदीय कार्यों के अनुप्रयोग की क्षेत्रीय सीमा का परिसीमन करते हैं और कुछ राज्यों जैसे अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, असम, मणिपुर, नागालैंड, जम्मू व कश्मीर, महाराष्ट्र और गुजरात में विशेष शक्तियों और उत्तरदायित्व वाले राज्यपाल के कार्यालय पर लागू होते हैं। यदि हम उपरिचर्चित संविधान के उपबंधों की सूक्ष्मता से जाँच करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में संघवाद प्रजातीय विविधता और प्रजातीय माँगों जैसे दीवानी और फौजदारी न्याय आदि के प्रशासन में परंपरागत कानून के अनुप्रयोग को समायोजित करने के लिए स्वरबद्ध किया गया है। नीतियों के गठन में प्रजातीय स्वरूप को समायोजित करने का कारण यह है कि संविधान विशेष रूप से स जित संस्थाओं जैसे स्वायत्त क्षेत्रीय और जिला परिषदों के माध्यम से प्रजातीय स्वशासन की अनुमति देता है। ऐसी दर्जनों परिषदें पूर्वोत्तर क्षेत्रों और भारत के अन्य हिस्सों में विद्यमान हैं। ये परिषदें देशी पहचान और विकास के संरक्षण और प्रोत्साहन की अपेक्षा करती हैं। चौथे स्तर स्वशासन की इकाइयाँ विद्यमान हैं। 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों के पारित होने के बाद, भारत का संविधान गांव और नगरपालिका स्तरों पर अपनी शक्तियों और प्राधिकारों को और अधिक संघीकृत करता है। पंचायत राज संस्थान प्रमुखत: विकासोन्मुखी कार्य कर रहे हैं। प्रत्यक्ष चुनाव से गठित पंचायतों और नगरपालिका निकायों से (i) सड़क, परिवहन आदि जैसी विकास की अवसंरचना का निर्माण करने; (ii) सामुदायिक परिसंपत्तियों का निर्माण और रखरखाव करने; (iii) लघु सिंचाई के प्रबंधन और नियंत्रण तथा जल प्रबंधन, भूमि संरक्षण और भूमि सुधार के माध्यम से कृषिक विकास को बढ़ावा देने; (iv) सामाजिक व क्षारोपण, पशुपालन, दुग्ध और मुर्गीपालन उद्योग को बढ़ावा देने; (v) ग्रामीण उद्योग के विकास को बढ़ावा देने; और (vi) स्थानीय स्तर पर शिक्षा और स्वास्थ्य के प्रबंधन और नियंत्रण की अपेक्षा की जाती है। संक्षिप्त में पंचायत राज संस्थाएँ स्व-शासन के लिए लोगों को शक्ति संपन्न बनाने की संस्थाएँ हैं। संघीय द ष्टिकोण से, पंचायत राज्य संस्थानों, राज्य और केंद्र के बीच रिश्ता 'एक के प्रति एक' आधार पर विद्यमान है। जहाँ केंद्र की बहुत सी विकास योजनाएँ राज्य के

हस्तक्षेप के बिना पंचायतें द्वारा लागू की जाती हैं, वहीं राज्य सरकार अपनी विकास योजनाओं और बजट का कुछ प्रतिशत पंचायतों को आबंटित करती हैं।

उपर्युक्त से इस तथ्य का पता चलता है कि भारत में संघवत् संघवाद अवश्यमेव क्षेत्रीय विकेंद्रीकरण के आधार पर कार्य करता है जो केंद्रीय परिसर और संघवाद के ग़ैर-केंद्रीकरण प्रतिदर्शों को आपस में जोड़ता है। यदि भारत में संघवाद प्रतिष्ठित संदर्भ से अमेरिकी संघवाद के प्रति अंतरित होता है तो यह मात्र विविधताओं को समायोजित करने तथा राष्ट्रीय हितों को पूरा करने के प्रयोजनार्थ है। परंतु इससे किसी भी प्रकार संघीय शासन के सहभागिता स्वरूप पर कोई फर्क नहीं पड़ता है। ऐसा इसके बहुपर्त्तीय होने के कारण है जिसे कोई भी शक्ति वितरण की सममितिक और असममितिक दोनों व्यवस्थाओं में पा सकता है।

11.4 'संघ' शब्द का अर्थ और प्रभाव

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 1 भारत को राज्यों के संघ के रूप में घोषित करता है जिससे भारत के संघ और उसकी एकता के अविनाशी होने का पता चलता है। निहितार्थ यह है कि किसी भी इकाई के पास छोड़ने का अधिकार नहीं है। भारत की विद्यमान आंतरिक सीमाओं के विभाजन, विलय और रूपांतरण से राज्यों का गठन करना संघ का एक मात्र विशेषाधिकार है। संघ के पास भारत के संघ में नये क्षेत्र का शामिल करने का अधिकार होता है। आज भारत 28 राज्यों और 7 संघीय राज्य क्षेत्रों से मिलकर बना है। कुल मिलाकर, भारत के संघ ने राज्य के गठन के चार संस्थागत सिद्धांतों पर अपनी इकाइयों को मान्यता दी है। राज्य पुनर्गठन आयोग (1955) द्वारा यथा-अवधारित सिद्धांतों में शामिल हैं: (i) भारत की एकता और सुरक्षा को संरक्षित और मजबूत करना; (ii) भाषाई और सांस्कृतिक एकरूपता; (iii) वित्तीय, आर्थिक और प्रशासनिक पहलुओं पर विचार करना; और (iv) राष्ट्रीय योजना का सफल प्रचालन। भारत ने 'अभिज्ञात सीमा' और 'प्रशासनिक सीमा' के सापेक्ष समरूपता के आधार पर अपनी इकाईयों के पुनर्गठन का यथासंभव प्रयास किया है। भाषा, संस्कृति और परिस्थिति विज्ञान का पुनर्गठन की सतत प्रक्रिया पर निर्णायक प्रभाव होता है। यद्यपि संघ को राज्य के गठन का एक मात्र विशेष अधिकार है, तब भी ऐसा प्रभावित राज्यों की विधान सभा द्वारा पारित संकल्प के आधार पर किया जाता है।

शब्द 'संघ' का एक और निहितार्थ यह है कि भारतीय संघवाद दो पहले से ही विद्यमान संप्रभु सत्ताओं के बीच सुसंहत (compacted) संघवाद नहीं है। यह संघ राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान पोषित, मात्र भारत की जनता के एकीकृत संकल्प से अस्तित्व में आया है। संभवतया यही कारण है कि उच्च सदन (राज्य सभा) जिससे संघ की इकाईयों के हितों का प्रतिनिधित्व करने की उम्मीद की जाती है, संतुलित (बराबर) प्रतिनिधित्व नहीं करता। यह जनसंख्या आकार के समानुपाती आधार पर गठित है। जनसंख्या आकार के अनुसार, प्रत्येक राज्य को राज्य सभा में सापेक्ष संख्या में सीटों का आबंटन किया गया है। इस प्रकार जहाँ उत्तर प्रदेश के पास 31 सीटें हैं वहीं मणिपुर, गोवा जैसे छोटे राज्यों को मात्र एक सीट आबंटित की गई है।

शब्द 'संघ' के तर्कसंगत परिणामस्वरूप, संघ और इसकी संघटक इकाइयाँ एकमात्र संविधान द्वारा विनियंत्रित हैं। प्रत्येक इकाई एक ही संविधान से अपना प्राधिकार प्राप्त करती है। ध्यान देने योग्य बात

यह है कि संघ और राज्यों के पास संविधान के आवश्यक अथवा मूलभूत स्वरूप को बदलने के लिए मौलिक प्राधिकार नहीं हैं। संघ और राज्यों के विधायी प्रकार से संवैधानिक उद्देश्यों को प्राप्त करने तथा संघ और राज्य के सुचारू प्रशासनिक कार्यचालन को आसान बनाने के लिए उपायों में संशोधन की शक्ति है परंतु उसे एक पक्षीय तौर पर प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सातवीं अनुसूची की तीन सूचियों में प्रविष्टियों का संशोधन, संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व, अनुच्छेद 368 में यथा अवधारित संशोधन के उपबंध और क्रियाविधि, संघ न्यायपालिका और राज्यों के उच्च न्यायलय से संबंधित विधायी सम्बन्ध, राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का चुनाव, संघ और राज्यों की कार्यकारी शक्तियों की सीमा, संघ राज्य क्षेत्रों के लिए उच्च-न्यायालयों से संबधित उपबंध जैसे अनेक उपबंध हैं जिन्हें संघ के न्यूनतम आधे राज्यों के समर्थन और अनुमोदन के बिना संघ संसद द्वारा संशोधित नहीं किया जा सकता। इससे राज्यों के संघ के बराबर संघीय आधार का पता चलता है।

एक अखंड संघीय संघ प्रास्थिति और अवसर की समानता के सिद्धांत के आधार पर संघीय राष्ट्र का स जन करता है। इस प्रकार भारत में किसी को दोहरी नागरिकता प्राप्त नहीं हो सकती। सांस्कृतिक रूप से भारत के लोग और विविध हो सकते हैं परंतु राजनीतिक तौर पर वे एक राष्ट्र एक सुसभ्य-राजनीतिक राष्ट्र का निर्माण करते हैं। ऐसे राष्ट्र का एक सर्वनिष्ठ अखिल भारतीय प्रशासनिक और न्याययुक्त फ्रेमवर्क होता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि संघटक इकाइयों का अपना निजी प्रशासनिक तंत्र नहीं हो सकता। अखिल भारतीय सेवाएँ संघ और राज्य के लिए सार्वजनिक है। उनका मूलभूत कार्य कुल मिलाकर भारत के क्षेत्र की सीमाओं में संघ के हितों को प्राप्त करना है। संविधान के अनुच्छेद 312 में प्रावधान है, ''यदि राज्य परिषदों ने विद्यमान और मतदान कर रहे कम से कम दो तिहाई सदस्यों द्वारा समर्पित संकल्प द्वारा घोषणा की है कि ऐसा करना राष्ट्रीय हित के लिए आवश्यक अथवा समीचीन है, उस स्थिति में संसद कानून बनाकर संघ और राज्यों के लिए एक अथवा एक से अधिक सार्वजनिक अखिल भारतीय सेवाओं का प्रावधान कर सकती है।'' ये संघवत् संघवाद के कुछ सामान्य लक्षण हैं। भारतीय संघवाद में संघीय शक्तियों के केंद्रीकरण के दो व्यापक प्रकार मिलते है परिस्थितिजन्य और सामंजस्य पूर्ण। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, संविधान ने केंद्र को 'आंतरिक कलह' और 'बाहरी खतरा जैसे युद्ध और आक्रमण से संरक्षण के लिए महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ सौंपी हैं। आंतरिक कलह में प्राकृतिक आपदा की स्थिति में भौतिक विफलता, राजनीतिक और संवैधानिक, विफलता तथा वित्तीय-आर्थिक संकट शामिल हैं। अनुच्छेद 352 से 360 तक कतिपय आपत्कालीन स्थितियों और संघीय व्यवस्था कार्यचालन पर उसके प्रभाव के बारे में हैं। संविधान, यहाँ 'सुरक्षा बाल्व' के सिद्धांत को मान्यता देता है जिसके उद्देश्यों में निम्नवत् शामिल है :

i) बाहरी आक्रमण, आंतरिक आक्रमण, विनाशकारी आतंकवादी गतिविधियाँ और राज्य के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह से *संघ की इकाइयों का संरक्षण*।

ii) *संविधान का अभिरक्षण :* इसके कारण, संवैधानिक राजनीतिक व्यवस्था पुन: प्रतिष्ठापित होती है। जो अन्यथा गलत प्रशासन, मंत्रालयीन/लिपिक वर्गीय (Ministrial) संकट (अस्पष्ट मतदाता चुनाव अथवा निलंबित संसद/ विधानसभा अथवा बार-बार दल बदल और दल व्यवस्था की विफलता के कारण शासकीय अस्थिरता), प्राकृतिक आपदाएँ और इसी प्रकार की अन्य भौतिक तथा राजनीतिक अव्यवस्था।

iii) *संघीय राष्ट्र की एकता और अखंडता का संरक्षण :* संघ इस स्थिति में राज्य सरकार की शक्तियों को स्वंय ग्रहण कर सकता है जब कोई विशेष राज्य सरकार स्वंय भारत की क्षेत्रीय अखंडता के विरूद्ध जाती है अथवा राज्य में संवैधानिक प्रक्रिया समाप्त हो सकती है।

iv) *संघ और प्रांतों को वित्तीय संकट और आर्थिक अव्यवस्था से बाहर लाना :* वित्तीय आपातकाल का सार सर्वोत्कृष्ट तथ्य की इस प्राप्ति में निहित है कि देश की आर्थिक संरचना एक और अविभाज्य है। यदि कोई राज्य वित्तीय रूप से अभावग्रस्त है तो यह केंद्र के वित्त को प्रभावित करेगा, यदि केंद्र त्रस्त है तो सभी राज्य संकटग्रस्त हो जाएँगे। इस प्रकार राज्यों और केंद्र की अंतरनिर्भरता इतनी विशाल है कि देश की संपूर्ण वित्तीय अखंडता एक है और ऐसा समय आ सकता है जब निरपेक्ष रूप से एकात्मक नियंत्रण की आवश्यकता पड़े।'' के०एम० मुंशी ने 16 अक्टूबर 1949 को संविधान सभा में कहा था।

परिस्थितिजन्य केंद्रीकरण का एक अन्य आयाम भी है। राज्य परिषद् (राज्य सभा) के संकल्प पर, संघ संसद राज्य सूची में दिए गए किसी मामले के संबंध में अथवा भारत क्षेत्र के संपूर्ण अथवा किसी हिस्से के लिए संकल्प में यथानिर्दिष्ट कानून बना सकती हैं।

भारतीय संघवाद का एक अन्य लक्षण यह है कि यह *सहमति द्वारा केंद्रीकरण अथवा सामंजस्यपूर्ण केंद्रीकरण* के लिए प्रावधान करती है। अनुच्छेद 252 में प्रावधान है,'' यदि दो या दो से अधिक राज्यों की विधान सभाओं को यह वांछनीय प्रतीत होता है कि ऐसा कोई मामला जिसके बारे में संसद को अनुच्छेद 249 और 250 में यथाप्रदत्त को छोड़कर राज्यों के लिए कोई कानून बनाने की शक्ति नहीं है, उन राज्यों के लिए संसद द्वारा कानून बनाकर विनियमित किया जायेगा और यदि उन राज्यों की सभी विधान सभाओं द्वारा उस प्रभाव के कोई संकल्प पारित किए जाते हैं तो संसद के लिए तदनुसार उस मामले के विनियमन हेतु कानून पारित करना विधिसंगत होगा।'' इस उपबंध में दो राज्यों के बीच सार्वजनिक चिंतन के मुद्दों को विनियमित करने का उद्देश्य संनिहित है, जो अन्यथा स्थिति में कानून की विविधता और मुद्दों के विविध परिप्रेक्ष्य के कारण संभव नहीं हैं। सामंजस्यपूर्ण केंद्रीकरण केंद्र को राज्य सूची में उन विषयों पर मध्यस्थता करने तथा सार्वजनिक नीति अभिगम का निर्माण करने की अनुमति देता है जिन्होंने राष्ट्रीय अथवा परास्थानीय (Translocal) महत्त्व प्राप्त कर लिया है। समर्थकारी उपबंध अंत मुद्दों के बेहतर समन्वयन के लिए प्रावधान करते है।

11.5 अंतर-राज्यीय समन्वयन

अंतरराज्यीय और संघ राज्य संबंधों के समन्वयन तथा संघीय तंत्र के सामंजस्य पूर्ण कार्यचालन के लिए संविधान व्यक्त रूप से अंतर राज्यीय परिषद के गठन अथवा अन्य इसी प्रकार के विषयों और क्षेत्रीय विशिष्ट परिषदों के लिए प्रावधान करता है। सबसे पहली अंतरराज्यीय परिषद का गठन 28 मई 1990 को हुआ था। प्रमुखत: एक संस्तुतिकारी निकाय होने के नाते, परिषद से निम्न कर्तव्यों को पूरा करने की अपेक्षा की जाती है।

क) उन विषयों की तलाश करना और उन पर चर्चा करना जिनमें कुछ अथवा सभी राज्य अथवा राज्य, अथवा संघ और एक या एक से अधिक राज्यों का सर्वजनीन हित हो, जैसा उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाए;

ख) किसी विषय पर संस्तुति करना और विशेषकर उस विषय के संबंध में नीति और कार्रवाई के बेहतर समाधान के लिए संस्तुति करना; और

ग) राज्यों के लिए सामान्य हित के उन मामलों पर विचार विमर्श करना जिन्हें अध्यक्ष द्वारा परिषद् को भेजा गया हो।

इस संदर्भ में इस तथ्य की पुनराव त्ति वांछनीय है कि संघवाद से संबधित सांविधिक उपबंध दुहरे संघवाद के अन्य लक्षणों से बचते हैं। भारतीय संघवाद की मूलभूत लौकिक नीतियों का समन्वयन किया जाता है और जहाँ संघ की सफलता के लिए केंद्र और राज्य बराबर के भागीदार है वहाँ संघ के कार्यों में सहयोग किया जाता है। अधिकांशत: संघीय शक्तियों के केंद्रीकरण और राज्यों की स्वायत्तता पर प्रबंध के लिए केंद्र की अधिभाविता भी परिस्थितिजन्य है। केंद्र उन शाक्तियों का स्वेच्छा से प्रयोग नहीं कर सकता है। पर्याप्त रूप से संसदीय जबाव देही, संवीक्षा, अनुमोदन तथा कानून की उचित प्रक्रिया के अध्यधीन हैं।

11.6 सामर्थ्य का वितरण

वित्तीय शक्तियों का वितरण आवश्यक रूप से क्षेत्रीयता की धारणा और तदनुसार विषयों के विशिष्टीकरण पर आधारित है। इस प्रकार स्थानीय हितों के मुद्दों और वे विषय जिनका सीमाओं के पास निहितार्थ नहीं है, राज्य सूची में एक साथ रखे गए हैं। सूची में 62 मुद्दे अथवा प्रविष्टियाँ है जिन पर राज्य सरकार को कानून बनाने और उसे अमल में लाने की अनन्य सामर्थ्य होती है। सूची में सार्वजनिक व्यवस्था और पुलिस, स्थानीय शासन, जन स्वास्थ्य और स्वच्छता, कृषि, जंगल, मछली उद्योग, बिक्रीकर और अन्य कर्तव्य जैसे विषय शामिल हैं। संघ सूची में 96 मुद्दे हैं जो संघीय संसद को विदेशी मामलों, राज्य, मुद्रा, नागरिकता, संचार, बैंकिंग संघ के शुल्क, कर आदि पर कानून बनाने की शाक्ति प्रदान करते हैं।

तथापि, उद्योग, खान और खनिज जैसे ऐसे मुद्दे हैं जो दोनों सूचियों में शामिल हैं। इसका सुस्पष्ट उत्तर प्राप्त करने के लिए भारत की संघीय योजना में उपलब्ध सामर्थ्य के प्रकारों पर चर्चा करनी पड़ेगी। व्यापक तौर पर तीन प्रकार की सामर्थ्य हैं: एक, जिस पर सरकारों की अनन्य और विशिष्ट सामर्थ्य होती है। यह इस अर्थ में दुर्लभ है कि रक्षा, विदेश मामले आदि जैसे मुद्दों पर, प्राधिकार का प्रत्यायोजन संघ सरकार द्वारा किया जाता है। दो, उद्योग, खान और खनिज जैसे मुद्दों पर राज्य सरकार की अनन्य परन्तु सीमित सामर्थ्य होती है। इन विषयों पर, इसकी सामर्थ्य, विशाल सार्वजनिक और राष्ट्रीय हितों को पूरा करने के लिए संघ सरकार द्वारा विनिमयन के अध्यधीन होती हैं। अंतत: कुछ समवर्त्ती अधिकार क्षेत्र (त तीय सूची) के मुद्दे हैं जिन पर संघ की प्रत्येक इकाई की अनन्य परंतु समवर्त्ती सामर्थ्य होती है। विवाद की स्थिति में आमतौर पर संघ का कानून राज्यों के कानूनों पर लागू होता है। ग़ैर संगठित मद के मामलों में, संघ सरकार को कानून बनाने की अवशिष्ट शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। जहाँ तक कार्यकारी प्राधिकार के वितरण का संबंध है, यह आमतौर पर विधायी शक्तियों के वितरण की योजना का अनुसरण करता है। दूसरे शब्दों में, संघ और राज्य सरकारों की कार्यकारी शक्तियाँ अपनी संबद्ध विधायी सामर्थ्य के साथ सह-विस्त त हैं। राज्य सरकार के मामले में, विधायी क्षेत्र के ऊपर इसकी कार्यकारी प्राधिकार 'क्षेत्रीय गठबंधन के सिद्धांत' तक गुणात्मक प्रतिबंध के अध्यधीन है। तथापि, जैसा कि डी॰डी॰ वसु टिप्पणी करते हैं, जहाँ कोई नयापन लागू किया गया है वह समवर्त्ती क्षेत्र में आएगा। ''जहाँ समवर्त्ती

विधायी सूची (अर्थात् सूची 3) में शामिल मामलों का संबंध है, कार्यकारी क्रियाकलाप सामान्यतः राज्य के पास रहेगे परंतु वे संविधान के उपबंधों अथवा संसद द्वारा बनाए गए किसी कानून के अध्यधीन होंगे जो व्यक्त रूप से ऐसे कार्य संघ को सौंपता है। इस प्रकार, भूमि अधिग्रहण अधिनियन, 1894 और औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (अनुच्छेद 73 का उपन्तुक) के अधीन, केंद्र ने इन दो अधिनियमों से संबंधित सभी कार्यकारी क्रियाकलाप स्वंय को सौंपे हुए हैं। तथापि, संघ की कुछ अनन्य कार्यकारी शक्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं जिनकी राज्यों द्वारा अवहेलना अथवा अमान्यता स्थिति में राजनीतिक कार्रवाई की जाएगी क्योंकि यह संविधान का उल्लंघन हैं। इसमें संघ की वे शक्तियाँ शामिल हैं जो राज्य सरकारों को दिशा निर्देश देती हैं; संघीय कानून का उचित अनुपालन सुनिश्चित करती हैं : राज्य की कार्यकारी शक्तियों का प्रयोग इस तरह सुनिश्चित करती हैं जिससे संघ की कार्यकारी शक्तियों में हस्तक्षेप न हो, राज्य द्वारा राष्ट्रीय अथवा सैनिक महत्व के संचार साधनों का निर्माण और रखरखाव सुनिश्चित करती हैं; राज्य के भीतर रेलवे की सुरक्षा सुनिश्चित करती हैं; राज्यों में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए आवश्यक निदेशों में विनिर्दिष्ट योजनाओं को तैयार करना और उनका कार्यान्वयन सुनिश्चित करती है; प्राथमिक चरण पर मात भाषा में अनुदेश देने के लिए राज्य द्वारा पर्याप्त उपबंध सुनिश्चित करती हैं और सबसे ऊपर यह सुनिश्चित करती हैं कि राज्य सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार कार्य कर रही है। किसी प्रकार के आपात्काल के दौरान भी, संघ सरकार उस तरीके से निर्देश जारी करने की अपनी शक्ति के माध्यम से विनिमयन कर सकती है जिस तरीके से राज्य की कार्यकारी शक्ति का प्रयोग होता है। दूसरे शब्दों में, राज्य को भारत के संघीय संविधान के अंतर्गत; कतिपय अनिवार्य कर्तव्य सौंपे गए हैं।

केंद्र राज्य प्रशासनिक रिश्ते नीति और नियोजन में विभाजन (किसी विक्रय वस्तु के ऊपर निर्णयों के नियंत्रण और कार्यान्वयन का क्षेत्रीय विभाजन), समन्वयन और सहयोग के सिद्धांत पर आधारित है। कई क्षेत्रों में, यद्यपि केंद्र के पास अनन्य विधायी सामर्थ्य होती है तदपि यह स्वतंत्र निर्णय लेने के लिए आनुषंगिक विधायी और कार्यकारी सामर्थ्य राज्यों को प्रत्यायोजित करती है। केंद्र प्रत्यक्षतः रक्षा, विदेशी कार्य जिनमें पासपोर्ट भी शामिल हैं, संचार (डाक व डाकतार, दूरभाष,) संघ सूची कर और औद्योगिक विनियमन के मामलों पर प्रशासन करता है। संघ सूचियों में शेष मामलों पर, ''सांविधिक अथवा कार्यकारी प्रत्यायोजन'' के तहत प्रशासनिक कार्य राज्यों द्वारा किए जाते हैं। भारतीय संविधान पर एक भाष्य में सही इंगित किया गया है कि ''अधीनस्थीकरण का कोई घटक प्रतीत नहीं होता है तथापि समय-समय पर सहयोग अनिवार्य किया गया है। संविधान संघ-राज्य प्रशासनिक संबंधों के आवश्यक सभाओं के बारे में बताता है तथा उनके बीच प थक्कीकरण की कोई दीवार खड़ी नहीं करता है। उत्तरदायित्वों के आवंटन का भी कोई कठोर प्रतिदर्श नहीं है। संघीय संसद संघ सूची मामलों से संबंधित कानून के अधीन शक्तियाँ प्रदान कर सकती है और शुल्क लगा सकती हैं। राष्ट्रपति ऐसे किसी मामले के संबंध में जिसे संघ की कार्यकारी शक्ति प्रदान करते हैं, राज्य सरकारों को कार्य सौंप सकता है राज्य अधिशासी कार्य, किसी बात के होते हुए भी, सशर्त अथवा बिना किसी शर्त के केंद्र सरकार को सौंपे जा सकते हैं। व्यावहारिक रूप में राज्य संघ सरकार के प्रशासनिक क्षेत्र में भी बड़े पैमाने पर अधिशासी प्राधिकार का प्रयोग करते हैं'' (*कागजी का भारत का संविधान,* खंड 1, 2001)।

संघ और राज्य के बीच वित्तीय संबंध संसाधनों की सहभागिता और न्याय संगत वितरण पर आधारित है। संविधान ''कर उद्ग्रहण के लिए विधायी शक्ति तथा इस प्रकार उद्ग्रही कर के आगम के विनियोग के

लिए शक्ति के बीच अंतर भी रखता है। केंद्र और राज्यों को करों के अधिरोपण और उद्ग्रहण के लिए कतिपय मुद्दे सौंपे हुए हैं। संघवाद की इकाईयों में किसी को भी करों के अधिरोपण और ऋण के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए भी उपबंध किए गए है।'' सहायता अनुदान की राशि संसद द्वारा निश्चित की जाती है। किसी राज्य द्वारा अपने राज्य में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण को बढ़ावा देने के प्रयोजनार्थ केंद्र के पूर्व अनुमोदन से आरंभ की गई विकास परियोजना अथवा अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन के स्तर को उठाने के लिए केंद्र द्वारा सहायता अनुदान के रूप में कोष दिया जाता है जो भारत की समेकित निधि पर प्रभावित होता है।

वित्तीय सामर्थ्य के आवंटन में, प्रत्येक इकाई को अनन्य करों की स्वीकृति दी गई है। संघ को अनन्य करों की सूची में सीमा शुल्क, निगम कर, व्यष्टियों तथा कंपनियों की परिसंपत्तियों के पूँजी मूल्य पर कर, आयकर पर अधिकार आदि शामिल है। इसी प्रकार राज्यों को अनन्य करों में भूमि राजस्व, स्टाम्प शुल्क, उत्तराधिकार और संपदा शुल्क, कृषि भूमि पर आय पर बिक्री कर (यह अब मूल्य संवर्धित कर की नई प्रणाली द्वारा अनुपूरित किया जा रहा है) आदि शामिल है। इस तथ्य के बावजूद कि राज्य द्वारा विभिन्न कर संसाधनों से प्राप्त राजस्व की मात्रा उसके बजट और योजना प्रस्तावों को पूरा करने के लिए काफी पर्याप्त सिद्ध नहीं हो सकती है, संविधान में संघ द्वारा अर्जित करों के आगम के विभाजन का प्रावधान है। संग्रहण, विनियोजन और विभाजन का तरीका एक मामले से दूसरे मामले में बदल सकते हैं। इस प्रकार जबकि कुछ शुल्क जैसे स्वास्थ्य शुल्क तथा चिकित्सीय तथा प्रसाधन सामग्री पर उत्पाद शुल्क यद्यपि संघ सूची में है, संघ द्वारा उद्ग्रही किए जाते है परंतु राज्यों द्वारा संग्रही एवं विनियोजित होते हैं। (अनुच्छेद 268)। वस्तुओं की बिक्री और खरीद पर कर और वस्तुओं की सुपुर्दगी पर कर संघ द्वारा उद्ग्रहीत और संग्रहित होते हैं परंतु आगम तदोपरात्त उन राज्यों को सौंपे जाते हैं जिनके भीतर उनका उद्ग्रहण किया गया है। कुछ कर जैसे ग़ैर कृषि आय पर कर, उत्पाद शुल्क संघ सूची में शामिल हैं परंतु चिकित्सीय और प्रसाधन सामग्री संघ पर उत्पाद शुल्क द्वारा उद्गीत और संग हीत किए जाते हैं और तदोपरांत निश्चित अनुदान में संघ और राज्यों के बीच विभाजित किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त, संघ और राज्यों को ग़ैर-कर राजस्व की अलग सौंपे गए हैं। संघ के ग़ैर-राजस्वों के प्रमुख स्रोत रेलवे, डाक एवं तार, संघ के पास औद्योगिक और वाणिज्यिक उपक्रमों जैसे एअर इंडिया, इंडियन एअर लाएंस आदि हैं। इसी प्रकार राज्य के ग़ैर-कर राजस्व में जंगलों, सिंचाई तथा वाणिज्यिक उद्यमों जैसे विद्युत, सड़क परिवहन तथा औद्योगिक उपक्रमों अर्थात साबुन, चंदन, कर्नाटक लोहा और इस्पात, मध्य प्रदेश में कागज, मुम्बई में दुगध आपूर्ति, गहरे समुद्र में मछली पकड़ना तथा पश्चिम बंगाल में रेशम शामिल है।

यह सच है कि राज्य का कर आधार राज्य के सभी खर्चों और विकास अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए काफी पर्याप्त नहीं हैं। यह भारतीय अर्थव्यवस्था के समग्र स्वरूप के कारण है। जैसे कि ऊपर कहा जा चुका है, संघीय संघ ऐसे सूक्ष्मत: एकीकृत आर्थिक संघ को प्रतिष्ठापित करने की अपेक्षा करता है जहाँ संघ को राष्ट्र के सामाजिक आर्थिक पुनर्गठन का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व सौंपा गया है। अर्थव्यवस्था राष्ट्रीय है जहाँ क्षेत्रीय विकास की देखभाल संघ द्वारा की जाती है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए संघीय वित्त पोषण को निर्देशित किया जाता है। तथापि, समुदाय, वर्ग और क्षेत्रों के बीच आर्थिक असंतुलनों को दूर करने के लिए हमेशा पर्याप्त सावधानी रखी जाती है। संघ के विभिन्न विशेष सहायता कार्यक्रमों के माध्यम से समाज के पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए भी विशेष सावधानी रखी जाती है।

11.7 संघीय तंत्र की कार्यप्रणाली

संविधान के कार्यान्वयन के प्रथम चार दशकों के दौरान, भारत में संघवाद ने प्रबल केंद्रीकृत प्रव त्ति का प्रदर्शन किया जिसमें संघ सरकार ने अपनी संवैधानिक सामर्थ्य से अधिक शक्तियों का संचयन किया। यह सत्य है कि संविधान संघ में संघीय शक्तियों के परिस्थितिजन्य केंद्रीकरण की अनुमति देता है परंतु यह कभी भी सामान्य स्थिति में भी राज्यों की संघीय स्वायत्तता और शक्तियों का निलम्बन नहीं करता है केन्द्र ने किस प्रकार राज्यों की स्वायत्तता में हस्तक्षेप किया है? संघ सरकार ने अतिक्रमण के कई तरीके अपनाए: सर्वाधिक इसकी यह परिभाषित करने की शक्ति है कि क्या राष्ट्रीय है और क्या लोक हित है। इस विशेषाधिकार को अक्सर विधायी सामर्थ्य की व द्धि के लिए तथा राज्य सूचियों के मामलों में राज्य की विधायी शक्तियों के अतिक्रमण के लिए प्रयुक्त किया है। सातवीं सूची केवल मुख्य विषयों की प्रविष्टि करती हैं। वर्षों से केंद्र ने मुख्य विषयों को प्रभावी करने अथवा व्यापक लोक हित में विशेष मुद्दे पर राष्ट्रीय एकरूपता प्राप्त करने के लिए आनुसंगिक मामलों/विषयों पर कानून बनाने की परंपरा विकसित की है। परिणामस्वरूप, केंद्र ने उन विषयों पर भी अधिक्रमण किया है जो मूलत: राज्यों को सौंपे गए थे। उदाहरण के लिए, ''संघ सूची की प्रविष्टि 52 (उद्योग) और 54 (खान और खनिजों के विकास का विनियमन) के कारण संसद द्वारा पारित अधिनियम विशिष्ट उदाहरण हैं। प्रविष्टि 52 के तहत, संसद ने (उद्योग विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 को पारित किया है। परिणामस्वरूप, संघ अधिनियम की अनुसूची 1 में उल्लिखित उद्योगों की विशाल संख्या पर अब नियंत्रण रखता है। इसका संवैधानिक प्रभाव यह है कि इस अधिनियम के कारण संघ द्वारा रखे गए नियंत्रण की सीमा तक, राज्य सूची की प्रविष्टि 24 के अंतर्गत 'उद्योग' विषय के संबंध में राज्य विधायिकों की शक्ति कम हुई है।'' इस अधिनियम से कृषि उत्पादों जैसे चाय, काफी आदि को केंद्रीय विनियमन के तहत लाया गया है। इसी प्रकार, संसद ने, संघ सूची की प्रविष्टि 54 के अधीन लोकहित की अपेक्षित उद्घोषणा करके, खान और खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 को अधिनियमित किया है। इसका विधिक प्रभाव यह है कि इस अधिनियम द्वारा लागू सीमा तक ''राज्य सूची की प्रविष्टि 23 (खान और खनिज विकास अधिनियमन) के अधीन राज्य विधायिकाओं की विधायी शक्तियाँ बेदखल हो गई हैं'' केंद्र राज्य संबंधों के ऊपर सरकारिया आयोग की टिप्पणी है। परिणामस्वरूप, लगभग 93 प्रतिशत संगठित उद्योग प्रत्यक्ष रूप से संघ के नियंत्रण में आ गए हैं।

संविधान की सातवीं अनुसूची के अंतर्गत, संघ सरकार ने विलोपन, संवर्धन और अंतरण के द्वारा विभिन्न संशोधन अधिनियमों के माध्यम से केंद्र और राज्य के बीच सामर्थ्य के वितरण में परिवर्तन किए हैं। इस प्रकार बयालसीवें संशोधन अधिनियम ने राज्य सूची की प्रविष्टि 2 (शिक्षा), 19 (जंगल), 20 (वन्य जीवन का संरक्षण), 29 (वजन और मापन) तथा सातवें संशोधन अधिनियम ने प्रविष्टि 36 (संपत्ति का अधिग्रहण अथवा अधियाचन) को हटा दिया है। परिणामत; राज्य सूची में मूलत: जोड़े गए 66 विषयों के स्थान पर अब मात्र 61 विषय हैं। दूसरी तरफ बयालीसवें संशोधन अधिनियम ने अंतरण के माध्यम से समवर्त्ती सूची में चार विषय जोड़े हैं। इनमें 11 क (न्याय का प्रबंधन), 17 क (जंगल), 17 (ख) (जंगली पशुओं और पक्षियों का संरक्षण), 20 क (जनसंख्या नियन्त्रण और परिवार नियोजन) तथा 33 (वजन और मापन) शामिल हैं, इसके अतिरिक्त, प्रविष्टि 25 (शिक्षा) और 33 (व्यापार और वाणिज्य) में महत्त्वपूर्ण प्रतिस्थापन किए गए। परिणामस्वरूप, समवर्त्ती सूची में हमारे पास 51 प्रविष्टियाँ हैं। संघ

सूची में, हमें तीन महत्वपूर्ण प्रविष्टियाँ मिलेगी : 2 क (सशस्त्र बलों का नियोजन), 92 क (अंतर राज्यीय व्यापार और वाणिज्य के दौरान वस्तुओं की बिक्री और खरीद पर कर) तथा 92 ख (वस्तुओं की सुपुर्दगी पर कर)

इसके अतिरिक्त प्रतिस्थापन विधि से, केंद्र ने अपने 'उत्कृष्ट क्षेत्र में व द्धि की है। इसी के साथ ''योजना आयोग के माध्यम से केंद्रीकृत नियोजन एक ऐसा षडयंत्रकारी उदाहरण है जिसके माध्यम से संघ की भूमिका का कई क्षेत्रों में विस्तार हुआ है जैसे कृषि, मछलीपालन, भूमि और जल संरक्षण, लघु सिंचाई, क्षेत्रीय विकास, ग्रामीण निर्माण एवं ग ह निर्माण आदि जो अनन्यत: राज्य क्षेत्र में आते हैं।'' डी०डी० वसु द्वारा सही संकेत दिया गया है कि ''योजना आयोग के क्रिया कलाप मात्र रक्षा और विदेश कार्यों को छोड़कर धीरे-धीरे प्रबंधन के संपूर्ण क्षेत्र में इस कदर बढ़ गए हैं कि किसी समालोचक ने इसका ''कुल मिलाकर संपूर्ण देश के आर्थिक मंत्रिमंडल'' के रूप में वर्णन किया। एक सलाहकारी समिति होने के बावजूद, इसके राजनीतिक और नौकरशाही निशानों ने राज्यों के संघीय अनुदानों के स्वरूप को शीर्षाभिमुख कर दिया है। अब यह नियामक निकाय के रूप में अधिक प्रतीत होता है जो संघ के आदेश पर राज्यों को संसाधनों के अंतरण के राजनीतिकरण को कमजोर कर रहा है।

संस्थापक पूर्वजों की बुद्धिमत्ता के प्रतिकूल, अनुच्छेद 356 का 100 बार से अधिक प्रयोग, गलत प्रयोग, दुरुपयोग और अधिप्रयोग किया गया है। एक लक्ष्यपरक आकलन के आधार पर, यह लगभग 30 बार 'संविधान के रखरखाव के लिए प्रयुक्त किया गया है तथा उससे शेष बार केंद्र में शासक दल द्वारा, आमतौर पर, आदेश पर राजनीतिक संख्या के निपटान के लिए इसका दुरूपयोग किया गया है। इसके दुरुपयोग का सबसे हानिकारिक पहलू यह है कि अधिकांश मामलों में इसके संसदीय लोकतंत्र और संघवाद के मौलिक रूप की अवहेलना की गई है। यह अनुच्छेद इसके दुरुपयोग पर रोक लगाने के लिए व्यापक मानदंड अवधारित करने की अपेक्षा करता है। इस संबंध में सहकारिता आयोग की सिफारिशों के अलावा एस०आर० बोम्बई बनाम भारत संघ (1994) के ख्याति प्राप्त मामले में यहाँ (उच्चतम न्यायालय की) न्यायिक उद्घोषणा चर्चा के योग्य है। न्यायालय ने निर्णय दिया था कि राष्ट्रपति की संतुष्टि, भले ही स्वरूप से लक्ष्यपरक हो, इस अनुच्छेद का सार है। तथापि, राष्ट्रपति की संतुष्टि कुछ सुसंगत तथा वस्तुपरक सामग्री पर आधारित होनी चाहिए। राष्ट्रपति की शक्ति सशर्त है और स्वरूप से निरपेक्ष नहीं है। यदि न्यायालय राष्ट्रपति की उद्घोषणा को निरस्त करता है, तो उसे बर्खास्त सरकार को कार्यालयीन करने तथा विधान सभा को पुनर्जीवित करने तथा पुन: क्रियाशील बनाने की शक्ति होती है। जब तक उद्घोषणा का दोनों सदनों द्वारा अनुमोदन नहीं हो जाता तब तक विधान सभा को भंग नहीं किया जाना चाहिए अपितु उसे निलंबित स्थिति में रखना चाहिए, उद्घोषणा के संसदीय अनुमोदन पर बर्खास्त सरकार को राज्य में बहाल करना चाहिए' तथापि, राज्य की धर्मनिरपेक्षता पर न्यायालय की टिप्पणी दूरगामी महत्व की है। न्यायालय ने निर्णय दिया: ''धर्म निरपेक्षता संविधान के मौलिक लक्ष्यों में से एक है। जबकि भारत में सभी व्यक्तियों के लिए धर्म की स्वतंत्रता अभिनिश्चित है, राज्य के द ष्टिकोण से, किसी व्यक्ति का धर्म, विश्वास अथवा आस्था नगण्य है। राज्य के लिए सभी बराबर है और बराबरी का व्यवहार किए जाने के लिए हकदार है। राज्य के मामले में धर्म को नहीं मिलाया जा सकता है। कोई राज्य सरकार जो अधर्मनिरपेक्ष नीतियों अथवा अधर्मरिनपेक्ष कार्रवाई पर प्रतिक्रिया करती है, संवैधानिक आदेश के प्रतिकूल कार्य करती है तथा अनुच्छेद 356 के अधीन स्वयंमेव सहज कार्रवाई के लिए प्रस्तुत होती है।'' इसके दुरूपभोग को रोकने के लिए दुहरी कार्रवाई अपेक्षित है: (1) राष्ट्रपति और राज्यपाल

द्वारा इस शक्ति के प्रयोग में नियम और समागम द्वारा अधिकतम, वस्तुपरकता और पारदर्शिता सुनिश्चित करना, और (2) उन अवधारित आधारों को संहिताबद्ध करना जो इस अनुच्छेद पर लागू हो सकते हैं। इसके प्रतिबंधित प्रयोग को सुनिश्चित करने के लिए, इस अनुच्छेद के अंतर्गत मौलिक उद्देश्य राज्य में संवैधानिक व्यवस्था कायम करना होना चाहिए।

राज्यपाल द्वारा राज्य विधेयकों का आरक्षण, संघ और राज्य के बीच संसाधनों का वित्तीय आबंटन, राज्यपाल के प्रतिष्ठान का बढ़ता हुआ राजनीतिकरण और व्यक्तिपरकता, संघ के दिशा निर्देश, अर्द्धसैनिक बलों का नियोजन आदि जैसे कई अन्य समालोचनायोग्य क्षेत्र हैं जिन्होंने संघ-राष्ट्र संबंधों के सहज कार्यचालन को प्रभावित किया है। इसका निवल प्रभाव संघ में शक्तियों का अधिकेंद्रीकरण है। इस प्रकार जो अब अपेक्षित है वह है केंद्र की 'शक्तियां कम करना' तथा उनका 'विकेंद्रन' अथवा उनको राज्य को 'हस्तांतरित' करना है और राज्यों से पंचायतों और नगरपालिका निकायों को अंतरित करना। वास्तव में संविधान की तीन अनुसूचियों 7, 11 और 12 के बीच सामर्थ्यों का पुनर्वितरण अपेक्षित है। संविधान की मौलिक योजना को बाधित किए बिना, स्वायत्तता के सिद्धांत को वास्तविकता बनाने के लिए संघीय पुनर्गठन की आवश्यकता है। राज्य-समाज संबंधों के बदलते हुए संदर्भ में सभी संभावनाओं में सामर्थ्यों के पुनर्वितरण से संविधान के तीन मौलिक उद्देश्यों, एकता, सामाजिक क्रांति और लोकतंत्र को प्राप्त करना सहज हो जाएगा। पारस्परिक रूप से निर्भर होने के कारण, जैसा कि ग्रेन बिले ऑस्टिन चेतावनी देता है, इनमें से किसी एक को 'ध्यान न देने अथवा अधिक ध्यान देने से भारतीय राष्ट्र का स्थामित्व बाधित होगा तथा स्थायित्व के लिए प्रयास केंद्र का एक मात्र विशेषाधिकार नहीं होना चाहिए। यह संघ, राज्य और जनता का सामूहिक प्रयास है।

11.8 संघ द्वारा की गई विकेंद्रीकरण की पहल

आज के संदर्भ में, सहकारिया आयोग की रिपोर्ट संघीय व्यवस्था के सफल प्रचालन हेतु लचीलापन मुहैया कराने के लिए आंशिक प्रयास के रूप में मानी जाती है। आयोग ने कुल मिलाकर, संघवत् संघीय राजतंत्र का पता लगाया है जो भारत के संघीय राष्ट्र निर्माण के लिए उपयुक्त ही नहीं अपितु आवश्यक है। तथापि, इसने संघ के कुछ कार्यों को राज्य को सौंपने की सिफारिश की तथा अनुच्छेद 356 आदि जैसे कुछ विवादस्पद संघीय उपबंधों के कार्यान्वयन में पारदर्शी क्रियाविधिक मानदंड विकसित करने की आवश्यकता को रेखांकित किया। इसने सहकारी-सहचारी संघीय संस्कृति को विकसित करने की आवश्यकता पर भी जोर दिया जिसमें संघ और राज्य दोनों एक अखंड संघीय के निर्माण में समान भागीदारों के रूप में कार्य करेंगे। कुल मिलकर आयोग ने 230 विशिष्ट सिफारिशें की। आगे प्रगति के तौर पर, भारत सरकार ने 1990 में अंतरराज्यीय परिषद् का गठन किया। परिषद को सबसे पहले सहकारिया आयोग की रिपोर्ट की जाँच करने और अंतरराज्यीय संबंधों की संरचना और प्रक्रिया में संभव परिवर्तन पर सामंजस्य विकसित करने का कार्य सौंपा गया है। सरकारिया आयोग की 230 सिफारिशों जिन पर परिषद् के निर्णय लिया में से 108 सिफारिशों पर अभी तक कार्यान्वयन हुआ है, 35 अस्वीकार कर दी गई हैं तथा 8 पर कार्यान्वयन होना है। अनुच्छेद 356 से संबंधित शेष 17 सिफारिशें, राज्यों में अर्द्धसैनिक बलों का नियोजन, संघ के निर्देशों और संसद द्वारा (अनुच्छेद 256 और 257) बनाए गए कानून का अनुपालन और उनके अनुपालन में विफलता के प्रभाव, अथवा संघ सरकार द्वारा दिए गए निदेशों को लागू करना आदि पर परिषद की उप समिति द्वारा विचार किया गया है। संसद ने

राज्यपाल की भूमिका से संबंधित 6 सिफारिशों तथा अखिल भारतीय सेवा पर 18 सिफारिशों को अस्वीकार कर दिया है। वित्तीय संबंधों पर 44 सिफारिशों में से परिषद ने 40 सिफारिशों स्वीकार की हैं तथा शेष 4 सिफारिशों को अस्वीकार कर दिया है। वैसी ही स्थिति 'विधेयकों के आरक्षण' के साथ है। शीर्ष ''आर्थिक और सामाजिक नियोजन' से संबंधित 33 सिफारिशों पर केंद्र और राज्य के बीच कोई असहमति प्रतीत नहीं होती है। राज्यपाल की भूमिका, उद्योगों, खान और खनिजों आदि जैसे मुद्दों पर विचारों की विविधता अभी भी बनी हुई है।

परिषद् के कुछ एकमत निर्णयों में शामिल हैं : (i) कानून की अवशिष्ट शक्तियाँ संघ सूची (प्रविष्टि 97) से समवर्त्ती सूची को अंतरित कर दी जाएँ; (ii) समागम के मामले के रूप में, समवर्त्ती सूची पर कानून बनाते समय केंद्र द्वारा राज्यों से सक्रिय परामर्श प्राप्त किया जाए। यह विशेष रूप से समवर्त्ती सूची में मामलों से संबंधित संघ द्वारा अधिनियमित कानूनों के कारण है जिन्हें राज्य की मशीनरी के माध्यम से लागू किया जाता है और एकरूपता प्राप्त करने के लिए परामर्श आवश्यक है; (iii) राज्यपाल की नियुक्ति और चयन के मामलों में केंद्र द्वारा राज्यों के साथ परामर्श अनिवार्य किया जाए। इसे लागू करने के लिए संविधान में उपयुक्त संशोधन किया जाए। राज्यपाल के कार्यालय की निष्पक्षता और उदासीनता सुनिश्चित करने के लिए इस तरह नियुक्त व्यक्ति सक्रिय राजनीति से न जुड़ा हो। ''अल्पसंख्यक समुदायों से जुड़े व्यक्तियों के बारे में राज्यपाल के पदों पर नियुक्त करने के लिए भी विचार किया जाए''। राज्यपाल को, समागम के तौर पर, ''कार्यालय छोड़ने के बाद सक्रिय विभाजन राजनीति में वापस नही आना चाहिए भले ही वह द्वितीय अवधि के लिए अथवा भारत के राष्ट्रपति अथवा उपराष्ट्रपति के कार्यालय के लिए पात्र हो। स्वतंत्र और निष्पक्ष तरीके से राज्यपाल के कार्यों को सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक था(है)''। इसके अतिरिक्त, कुछ राज्यों में राज्यपाल को प्रदत्त विशेष शक्तियों उसकें विवेकानुरूप प्रयोग किया जाना चाहिए। जब किसी मुख्य मंत्री के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लंबित हो, राज्यपाल सदन के सत्रावसान हेतु उसके अनुरोध न माने अपितु राज्यपाल निजी तौर पर सभा का आह्वान करे। राज्यपाल के स्थान (राजभवन) पर सिरों की गिनती करने की बजाय सदन के तल पर बहुमत सिद्ध किया जाना चाहिए; (iv) राज्य विधेयक समयबद्ध निपटान के लिए राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति को भेजें जाएँ। राज्य विधेयक आमतौर पर राष्ट्रपति के विचारणीय नहीं होते बशर्ते कि संवैधानिक विशिष्टीकरण अथवा इस प्रयोजनार्थ सरकारिया आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कोई हवाला न दिया हो; (v) केंद्रीय करों में राज्य के अंश के अंतरण तथा संघ सूची से समवर्त्ती सूची को अंतरण के लिए वैकल्पिक योजना का अनुमोदन; (vi) अनुच्छेद 356 में संशोधन (संवैधानिक मशीनरी की विफलता के आधार पर राज्य में आपात्काल की उद्घोषणा) जिससे ऐसा ठोस आधार बने जिसके कारण इस उपबंध की उद्घोषणा की जा सके; (vii) राज्य सरकारों को वन्य भूमि को विकास हेतु दिक्परिवर्तन के लिए शक्तियों का प्रत्यायोजन; (viii) खान और खनिजों (विनियमन और विकास) अधिनियम के अंतर्गत, चार साल के बजाए प्रत्येक दो साल में रॉयल्टी दरों का संशोधन; (ix) राज्यों में विधायी परिषद् के स जन अथवा उन्मूलन पर समान नीति का सूत्रीकरण; (x) केंद्रीय उपक्रमों के वाणिज्यिक प्रचालन पर राज्यों के स्थानीय निकायों द्वारा अधिरोपित करों पर व्यापक केंद्रीय कानून का सूत्रीकरण आदि। परिषद् के इन निर्णयों में से अधिकांश संघीय प था के राजनीतिक-कार्यकारी मानदंडों को अवधारित करने के स्वरूप में हैं। इसके लिए संविधान के व्यापक संशोधन की आवश्यकता नहीं है।

11.9 अंतिम टिप्पणी

वर्षों से, भारतीय संघवाद ने संघीय राज्य गठन के विभिन्न दबावों को संरचनात्मक और राजनीतिक रूप से अपनाने और समयोजित करने के लिए पर्याप्त लचीलापन दर्शाया है। इसने प्रांतीयता के लिए पहचान से जुड़ी विभिन्न मांगों को समायोजित किया है। इसने, जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है, सामाजिक स्वायत्तता के संस्थाकरण को भी वरीयता दी है जैसा भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्रों में प्रतिबिंबित हुआ है। वस्तुस्थिति यह है कि भारत में संघवाद, जनता की शक्तिसंपन्नता के औजार के रूप में, सार्वजनिक रूप से द श्यमान है और उस सीमा तक संघीय लोकतंत्र सफलतापूर्वक कार्य करता प्रतीत होता है। इसी प्रकार, संघ-राज्य रिश्तों की रणभूमि में भारतीय संघवाद के सहयोगी-सहयोजित निर्माण में सरकारिया आयोग की सिफारिशों के अनुसार राजनीतिक दलों और संघ की इकाइयों के बीच लगभग एकसमता का पता चलता है। यथार्थ रूप से यही कारण है कि आज अनुच्छेद 356 आदि को समाप्त करने की, जैसी विगत वर्षों की तरह, कोई मांग नहीं करता। गठबंधन शासन के वर्तमान युग में राष्ट्रीय नीति-निर्माण प्रक्रिया में क्षेत्रीय दलों की बढ़ती हुई प्रमुखता भारतीय संघवाद की बढ़ती हुई शक्ति की प्रतीक है।

एक अन्य ध्यान देने योग्य विकास जिसका कोई भी प्रमाण देता है, राज्यों के बीच स्पर्धात्मक संघवाद का बढ़ना है। भारत की विद्यमान उदारीकृत बाज़ार व्यवस्था में, केंद्र स्वयमेव सामाजिक आर्थिक विकास के कई निर्णायक क्षेत्रों से वापस हो रहा है। राज्य को विदेशी प्रत्यक्ष निवेश पर बातचीत के लिए (वस्तुत: केंद्र द्वारा बनाए गए नियम और विनिमयन के अंतर्गत) अनुमति दी गई है। इसका यह अर्थ नहीं है कि राज्यों को संधि करने की शक्ति दी गई है। प्रतिस्पर्धात्मक संघवाद का दूसरा आयाम भी है। आंध्रप्रदेश, कर्नाटक आदि जैसे विकसित अथवा विकासशील और निष्पादक राज्य केंद्र द्वारा किये जा रहे वित्तीय आबंटन में और अधिक हिस्से की मांग कर रहे हैं। उनका तर्क है कि केंद्रीय आबंटन राज्य के निष्पादन स्तर से जोड़ा जाना चाहिए। इस प्रकार खेल क्षेत्र के न्यूनतम स्तर में ढील दी जानी चाहिए। कुछ भी हो इससे बिहार, उत्तर प्रदेश आदि जैसे अविकसित राज्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि एक आर्थिक संघ का मौलिक उद्देश्य व द्धि और विकास के संदर्भ में न्यूनतम क्षेत्रीय संतुलन को बनाए रखना है। यहाँ केंद्र की भूमिका निर्णयात्मक संघीय महत्त्व प्राप्त करती है। राष्ट्र निर्माण के उपाय के रूप में, भारत में संघवाद एक संघीय राष्ट्र और एक संघीय संघ निर्माण में व्यापक रूप से सफल हुआ है।

11.10 सारांश

इस इकाई में भारतीय संघवाद के स्वरूप और प्रमुख लक्षणों पर केंद्रित रहते हुए संघवाद की धारणा, उसके अर्थ और सार की शुरुआत की है। संघवाद (i) जनता और सरकार के बीच निकट संपर्क को बढ़ावा देने के लिए संघीय-स्थानीय प्रशासन के राज्यों और क्षेत्रों के गठन; (ii) ग़ैर केंद्रीकृत आधार पर संघीय शक्तियों के वितरण; और (iii) सहयोजित शासन के संस्थानों के स जन के माध्यम से सामूहिक शासन को वरीयता देता है। भारतीय संघवाद को कतिपय परिस्थितियों के अधीन केंद्रीकरण की अंतर्निमित प्रव त्ति वाले 'अर्धसंघीय' का स्वरूप दिया गया है। भारतीय संविधान द्वारा विधायी और कार्यकारी प्राधिकार को राज्य और केंद्र के बीच में विभाजित किया गया है। यद्यपि भारत राज्यों का संघ है, किसी इकाई के पास अतिक्रमण का अधिकार नहीं है और वे एकमात्र संविधान द्वारा शासित होती हैं।

केवल असाधारण परिस्थितियों में ही (आपात्काल की तरह) भारतीय संघवाद एकल राजतंत्र का स्वरूप ग्रहण करता है। संघ की इकाइयों को बाहरी आक्रमण से बचाने, संविधान को बनाए रखने, राष्ट्र की अखंडता की रक्षा करने तथा संघ को वित्तीय संकट से उबारने के लिए संघीय शक्तियों के केंद्रीकरण के परिस्थितिजन्य और सामंजस्यपूर्ण दो व्यापक प्रकार हैं। संघीय शक्तियाँ स्थानीय हित के मामलों वाले विषयों की क्षेत्रीयता और विशिष्टता के आधार पर राज्यों और संघ के बीच वितरित की गई हैं जैसे सार्वजनिक अव्यवस्था, पुलिस, कृषि, स्वच्छता, मछलीपालन, बिक्रीकर को राज्य सूची में रखा गया है। विदेशी कार्य, रक्षा मुद्रा आदि जैसे विषय संघ सूची में रखे गए हैं।

वर्षों से, भारत में संघवाद ने विभिन्न माध्यमों से अपने क्षेत्र का विस्तार करते हुए मूलत: राज्यों को सौंपे गए विषयों पर अतिक्रमण करते हुए प्रबल केंद्रीकृत प्रव त्ति का इज़हार किया। सरकारिया आयोग की रिपोर्ट संघीय व्यवस्था के सफल प्रचालन के लिए लचीलापन मुहैया कराने का एक प्रयास मानी गई है। संघवत् संघीय राज्यतंत्र भारत के लिए आवश्यक माना गया है परंतु आयोग ने संघ के कुछ कार्यों को राज्यों को अंतरित करने तथा कुछ विवादास्पद संघीय उपबंधों के कार्यान्वयन के लिए पारदर्शी मानदंड विकसित करने की सिफारिश की। भारत में संविधान जनता की शक्तिसंपन्नता के औजार के रूप में द श्यमान है और उस सीमा तक एक राष्ट्र निर्माण के उपाय के रूप में संघीय संघ के निर्माण मे सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है।

11.11 अभ्यास

1) क्या आप इस द ष्टिकोण से सहमत हैं कि भारत "सहायक एकात्मक सिद्धांतों वाले संघीय राज्य की अपेक्षा सहायक संघीय सिद्धांतों वाला एक एकात्मक राज्य" है?

2) भारत में संघीय शक्तियों के परिस्थितिजन्य और सामंजस्यपूर्ण केंद्रीकरण पर चर्चा करें।

3) भारत में संघीय तंत्र के कार्यचालन पर चर्चा करें।